ISSN: 2584-0231(Online)
International Journal of Multidisciplinary Research in Arts, Science and Technology
© IJMRAST | Vol. 3 | Issue 8 | August 2025
Available online at: https://ijmrast.com
https://doi.org/10.61778/ijmrast.v3i8.171

तुलसीदास के साहित्य में समन्वय की प्रासंगिकता

डॉ० होशियार सिंह

सहायक प्राध्यापक, हिन्दी विभाग, वल्लभ राजकीय महाविद्यालय, मंडी, हिमाचल प्रदेश-175001

Corresponding Author Email Id: hoshiyarppl@gmail.com

सारांश

तुलसीदास के साहित्य में समन्वय की प्रासंगिकता उनके समन्वयवादी दृष्टिकोण में निहित है, जिसने विभिन्न विचारधाराओं, भाषाओं और संस्कृतियों को एक साथ लाकर समाज को एकता का संदेश दिया। लोक और शास्त्र, निर्गुण और सगुण भक्ति, ज्ञान और भक्ति, अवधी और ब्रजभाषा, तथा हिन्दू और मुस्लिम संस्कृतियों के बीच समन्वय स्थापित करके उन्होंने एक विस्तृत और समावेशी दृष्टिकोण प्रस्तुत किया। आज के भोगवाद, आतंकवाद और सामाजिक विघटन के युग में भी, तुलसीदास की समन्वयवादी विचारधारा मानव जाति को मानसिक और आत्मिक शांति प्रदान करने में सक्षम है, जिससे उनकी प्रासंगिकता बनी हुई | तुलसीदास वास्तविक तौर पर समन्वयवादी कवि और लेखक था। उन्होंने राम को ईश्वर माना और उनकी आजीवन आराधना की । उनके धार्मिक गतिशीलता का कारण जीवन की वास्तविकता को समझना तथा अपने धर्म की रक्षा करने के लिए तत्पर रहना था। तत्कालीन सामाजिक परिस्थितियां मुस्लिम आक्रमणकारियों से प्रभावित थी । यह जबरन अपना धर्म भारतीय जनमानस पर धोप रही थी जिसके कारण तुलसीदास की समन्वय की भावना का प्रखर रूप देखने को मिला। तुलसीदासजी का जन्म संवत 1589 को उत्तर प्रदेश के राजापुर नामक गावं में हुआ था। इनके पिता का नाम आत्माराम दुबे तथा माता का नाम हुलसी था। तुलसीदासजी का विवाह दीनबंधु पाठक की पुत्री रत्नावली से हुआ था। हिंदी साहित्य के स्वर्ण युग के महान भक्त, प्रबुद्ध कवि और दार्शनिक महाकवि तुलसीदास, जिन्होंने अपने साहित्य के माध्यम से समन्वय स्थापित किया, समन्वय की साधना का उन्होंने निरन्तर आध्यात्मिक अभ्यास किया है जिसने आज तक भारतीय जनता को प्रभावित किया है। उनके विचार में, सांप्रदायिक या भाषाई विवाद तुच्छ या पाखंडी दिमाग की उपज थे और इसलिए उन्होंने हमेशा एक समन्वित दृष्टिकोण अपनाया। इस शोध पत्र में गोस्वामी तुलसीदास की लोकनायक के रूप में समन्वय साधन का अध्ययन किया गया है।

कीवर्ड: समन्वयवाद, तुलसीदास साहित्य, भक्ति आंदोलन, सांस्कृतिक एकता, धार्मिक सहिष्णुता.

प्रस्तावना

'समन्वय' शब्द के कई अर्थ हैं। मोटे तौर पर इसका उपयोग पारस्परिक संबंधों को बनाए रखने के लिए किया जाता है, लेकिन इसका उपयोग एक विशिष्ट अर्थ में भी किया जाता है और वह है 'विपक्ष को

हटाकर विरोधी चीजों, चीजों या विचारों को समेटना। जिसे तुलसी ने लिखा है। समय साहित्य में प्रवेश किया । समाज, धर्म, राजनीति, भक्ति, साहित्य और उस समय के लोगों के जीवन में कई परिस्थितियाँ एक-दूसरे के विरोध में खड़े होकर लोगों के जीवन को कठिन बना रही थीं । धर्म के क्षेत्र में शैव, वैष्णव और शाक्तों के रूप में विभिन्न संप्रदाय प्रतिदिन कट्टरता की ओर बढ़ जा रहे थे। सगुणो उपासक जहां निर्गुण पथ को नीरस बताकर उसकी आलोचना कर रहे थे, वहीं निर्गुणपंथी भी सगुण भक्ति का विरोध कर रहे थे। ज्ञान, कर्म और भक्ति के बीच चुनाव को लेकर जनता भ्रमित थी। सभी वैष्णव आचार्य शंकर के निर्गुण ब्रह्मवाद और माया के विरोधी थे, जबकि सभी अद्वैतवादी माधवाचार्य के द्वैतवाद के विरोधी थे। राजा और प्रजा के बीच, वेदों और अभ्यास के बीच की खाई लगातार बढ़ती ही जा रही थी। पारिवारिक संबंधों और वर्णाश्रमधर्म में असमानता नजर आती थी। ऐसे समय में सभी साहित्यकार अपने-अपने स्तर पर इन परिस्थितियों से निपटने का प्रयास कर रहे थे। जायसी ने जहां भारतीय प्रेम और लोक कथाओं को फारसी मसनबी शैली में पिरोकर प्रेम का संदेश दिया, वहीं कबीर ने भी हिंदू-मुस्लिम, ऊंच-नीच, अमीर-गरीब आदि के भेदों भाव का विरोध कर समाज को एकता के धागे में पिरोने का प्रयास किया। इस क्षेत्र में सबसे महत्वपूर्ण और सराहनीय कार्य है तुलसीदास ने किया। उन्होंने इन सभी अंतर्विरोधों को कई भागों में दूर कर अपनी समकालिक दूर और समन्वयक दृष्टि का परिचय दिया और अपना निश्चित दार्शनिक दृष्टिकोण स्थापित किया जो मुख्य रूप से रामचरितमानस और विनय पत्रिका में देखा जाता है, इसीलिए आचार्य द्विवेदी ने उन्हें महात्मा बुद्ध के बाद सबसे महान लोकनायक साबित किया है। 'लोक नायक ही समन्वय कर सकता है।

तुलसीदास की समन्वय भावना

समन्वय शब्द सामान्यतः दो अर्थों में लिया जाता है। अपने व्यापक अर्थ में वह संयोग अथवा पारस्परिक संबंध के निर्वाह का द्योतक है। जब हम सांख्य और वेदांत अथवा निर्गुण और सगुण के समन्वय की बात करते हैं। तब हमारा अभिप्राय होता है, इन दोनों विचार धाराओं में सामंजस्य की स्थापना। इन दोनों ही दृष्टियों में तुलसीदास समन्वयवादी है। समन्वय भारतीय संस्कृति की एक महत्वपूर्ण विशेषता रही है। समय-समय पर इस देश की सभ्यता में कितनी ही संस्कृतियों का आगमन हुआ और आगे बढ़ा। परंतु वह घुल मिल कर एक हो गई। कितनी ही दार्शनिक धार्मिक। सामाजिक आर्थिक राजनीतिक साहित्यिक व सौंदर्य मूलक विचारधारा का विश्वास हुआ। किंतु उनकी परिणति संगम के रूप में हुई। यह समन्वय भावना का ही परिणामस्वरूप है कि नास्तिक बुद्धा ने राम को बोधिसत्व मान लिया। और आस्तिक वैष्णवों ने बुद्ध के अवतार रूप में प्रतिष्ठा की।

अर्थ, काम और धर्म का दृष्टिकोण

मोक्ष में प्रवृत्ति और निवृत्ति में साहित्य और जीवन में समन्वय स्थापित करने के विराट प्रयत्न किए गए। अनेकता में एकता की स्थापना की गई। धर्म दर्शन और समाज सुधार के क्षेत्र में गौतम बुद्ध लोकनायक थे। उनके द्वारा प्रतिष्ठित माध्यम प्रतिपदा त्याग और भोग के समन्वय का ही मार्ग है। लोकदर्शी तुलसी ने जनता के हृदय में धड़त और रामचरितमानस के रूप में वह आदर्श प्रस्तुत किया है।

जिसमें कवित्व और भक्ति दर्शन का अ समन्वय सिद्धांत का व्यवस्थित निरूपण और कार्यान्वयन मदारी का वृक्ष नहीं है। वह प्रत्यक्ष अनुभव सूक्ष्म और गहन अनुशीलन का सम्मिलित परिणाम है। जीवन स्वयं समझौता है। वे यौवन की कामाशक्ति के थे। और वैराग्य की पराकाष्ठा पर पहुंचकर आत्माराम भी हो गए थे। उनकी समन्वय साधना बहुमुखी है।

द्वैत -अद्वैत

तुलसी का दार्शनिक समन्वयवाद अत्याधिक विवाद का विषय रहा है। तुलसी के युग में वेदांत का प्रभुत्व था। उसके भीतर भी दो प्रकार के संघर्ष थे। पहला सभी वैष्णव आचार्य शंकर के निर्गुण ब्रह्माबाद और माया के विरोधी थे। दूसरा सभी अदैतवाद मध्य के द्वैतवाद के विरोधी थे। जहां अद्वैतवादियों और वैष्णव वेदान्तियों में मतभेद है वहां उन्होंने समन्वयवादी दृष्टि से काम लिया है। माया अविद्या है उसके अस्तित्व के विषय में कुछ नहीं कहा जा सकता। सगुण ब्रह्मा ही अवतार लेता है। एकमात्र निर्गुण ब्रह्म ही सत्य है। जीव जगत और ईश्वर सब मिथ्या है केवल ज्ञान ही मुक्ति का साधन है।

निर्गुण और सगुण

निर्गुण और सगुण का विवाद दो क्षेत्रों में था। दर्शनशास्त्र के क्षेत्र में और भक्ति के क्षेत्र में। शंकराचार्य निर्गुण ब्रह्मवाद को मानते थे ,उनका मानना था की ईश्वर कण - कण में विद्यमान है । रामानुज और वल्लभ सगुण ब्रह्म्मा को मानते थे । तुलसी ने दोनों का समन्वय करते हुए राम को निर्गुण सगुण कहा है। वस्तुतः राम एक है। वह निर्गुण और सगुण निराकार और साकार व्यक्त और अव्यक्त है। निर्गुण राम ही भक्तों के प्रेम वश सगुण रूप में प्रकट होते हैं।

इस ज्ञान के साथ कि ईश्वर केवल एक ही है, जिसे ईश्वर से प्रेम करने वालों ने अनेक नाम और रूप दिए हैं, अन्य धर्मों और आस्थाओं के प्रति हमारा दृष्टिकोण हमेशा सहिष्णुता और सम्मान से युक्त होना चाहिए। जब हम अपने प्रत्येक साथी मनुष्य में ईश्वर को देख पाते हैं, उसका सम्मान कर पाते हैं और उससे प्रेम कर पाते हैं, तो हम निश्चित रूप से सही भक्ति मार्ग पर हैं।

विद्या और अविद्या माया

विद्या और अविद्या दोनों को माया के ही दो रूप माना जाता है: विद्या माया ज्ञान का वह रूप है जो ईश्वर की ओर ले जाती है और मुक्ति का मार्ग दिखाती है, जबकि अविद्या माया अज्ञान का वह रूप है जो जीव को सांसारिक बंधनों में जकड़े रखती है और ईश्वर से दूर ले जाती है। ये एक ही ईश्वर की शक्ति के दो पहलू हैं, जहाँ विद्या आध्यात्मिक ज्ञान से मोक्ष दिलाती है और अविद्या संसार के भ्रम में फँसाए रखती है।

अद्वैतवाद में माया और अविद्या पर्यायवाची है। वैष्णव आचार्य ऐसा नहीं मानते वे माया को स्वभावत शक्ति मानते हैं। तुलसी की विद्या माया शंकराचार्य की माया से भिन्न है। क्योंकि वह जगत की

रचना भक्तों का कल्याण भी करती है। उसके अनुसार माया की भाव रूपा अभिन्न शक्ति है। सगुण ब्रह्मा की करती है, और

माया और प्रकृति

साख्य योग के अनुसार स्वतंत्र प्रकृति सृष्टि का कारण है। यह स्थुल जगत उसी का विकार है। अद्‌वैतवाद में माया को विच्छेप दृश्य शक्ति का कार्य माना गया। वैष्णवों ने पर ब्रह्मा और उसकी शक्ति माया द्‌वारा विश्व का निर्माण किया हुआ माना। सृष्टि प्रक्रिया में तुलसी ने वैष्णव दृश्य वेदांत की माया और साथियों की प्रकृति का समन्वय किया। उन्होंने प्रकृति को राम के अधीन और माया के अभिन्न मानकर दोनों में एक सूत्रता स्थापित की ।

जगत की सत्यता और असत्यता

साख्य योग वैष्णव वेदांत आदि ने जगत की सत्यता स्वीकार की गई है। वेद विरोधी आतमनादि और अनीश्वरवादी बौद्‌ध तुलसी की दृष्टि में सर्वथा तिरस्कृत हुए है। जिसके विरुद्‌ध राम को विश्वरूप तथा जगत को राम का अंश बताकर उन्होंने जगत की सत्यता प्रतिपादित की हुई है। क्योंकि राम से अभिन्न जगत मिथ्या नहीं हो सकता। दूसरे शब्दों में तुलसी ने द्‌वैतवाद और अद्‌वैतवादी मतों का समन्वय किया हुआ है। राम और जगत में तत्वतः अभेद है।

जीव का भेद अभेद

तुलसी का जीव विषयक सिद्‌धांत वैष्णव दृ वेदांतिओं के मतों का समन्वय है। तुलसी ने भेदवाद और आप अभेदवाद दोनों का समन्वय किया है। जीव ईश्वर का अंश मात्र है वह माया का स्वामी नहीं है। मुक्त होने पर ईश्वर का स्वरूप प्राप्त कर लेता है, किंतु ऐश्वर्य को नहीं।

कर्म, ज्ञान एवं भक्ति का समन्वय

जीव की पूर्णता इन तीनों में समन्वय में है। वही साधना सिद्‌धिदायिनी होती है जो साधक की पूरी सत्ता के साथ की जाए। सत्कर्म के बिना चित निर्मल नहीं हो सकता। और मूल से युक्त चित ज्ञान भक्ति का उदय असंभव है। अतः तुलसी ने तीनों के समन्वय पर बल दिया है।तुलसीदास का समग्र जीवन और कार्य कर्म, ज्ञान और भक्ति के समन्वय का उत्कृष्ट उदाहरण है, जिसमें उन्होंने लोक और शास्त्र, निर्गुण और सगुण, तथा व्यक्तिगत और सामूहिक जीवन के बीच सामंजस्य स्थापित किया। उन्होंने भक्ति को मुख्य मार्ग बनाया लेकिन ज्ञान और कर्म को भी महत्व दिया, साथ ही सामाजिक और सांस्कृतिक विभिन्नताओं को रामराज्य की अवधारणा में एकीकृत किया।

जीवनमुक्ति और विदेहमुक्ति

अद्‌वैतवादियों के अनुसार आत्म साक्षात्कार या ब्रहम साक्षात्कार होने पर देहावसान के पूर्व ही आत्मा जीव उन्मुक्त हो जाती है। अधिकतर वैष्णव आचार्य जीव मुक्ति नहीं मानते। समन्वयवादी तुलसी को जीवनमुक्ति तथा विदेह मुक्ति और विदेह मुक्ति के उक्त चारों प्रकार माननीय है। इसमें कोई विरोध नहीं है। ज्ञान और भक्ति का उदय ही मनोमुक्ति है।

तुलसीदास के दोहे

1. तुलसी मीठे बचन ते, सुख उपजत चहुँ ओर बसीकरन इक मंत्र है, परिहरू बचन कठोर
2. सचिव बैद गुरु तीनि जौं, प्रिय बोलहिं भय आस राज धर्म तन तीनि, कर होइ बेगिहीं नास
3. दया धर्म का मूल है, पाप मूल अभिमान तुलसी दया न छोडिये, जब तक घट में प्राण
4. मुखिया मुखु सो चाहिऐ, खान पान कहुँ एक पालइ पोषइ सकल, अंग तुलसी सहित विवेक
5. नामु राम को कलपतरु, कलि कल्यान निवासु जो सिमरत भयो भाँग, ते तुलसी तुलसीदास
6. तुलसी साथी विपत्ति, के विद्या विनय विवेक साहस सुकृति सुसत्यव्रत, राम भरोसे एक
7. तुलसी भरोसे राम के, निर्भय हो के सोए अनहोनी होनी नही, होनी हो सो होए
8. "कलि मल ग्रसे धर्म सब लुप्त भए सग्रंथ।
   दंभिन्ह निज मति कल्पि करि प्रगट किए बहुपंथ ||"

इस प्रकार तुलसी अपनी समन्वय साधना के कारण ही भक्तिकाल युग के लोकनायक थे। तुलसीदास में वह प्रगतिशीलता विद्यमान थी, जिससे वे परिस्थितियों के अनुकूल नवीन दृष्टिकोण अपना कर प्राचीनता का संस्कार कर सकें। इतनी विषमताओं में समन्वय स्थापित करने वाला पुरुष यदि लोकनायक नहीं होगा तो और कौन होगा? भक्ति शील और सौन्दर्य के अवतार तुलसी के राम सर्वशक्तिमान, सौन्दर्य की मूर्ति एवं शील के अवतार हैं। वे मर्यादापुरुषोत्तम हैं।

"जब-जब होहि धरम के हानि। बाढ़हि असुर महा अभिमानी ||
तब-तब धरि प्रभु मनुज सरीरा। हरहिं सकल सज्जन भव पीरा ॥"

अर्थात जब भी समाज में कोई बाधा -विघ्न पड़ता है और उसकी गति रुक जाती है तो एक महापुरुष का उदय होता है और गति का ठहराव समाप्त हो जाता है और आपसी सहयोग और समानता का वातावरण बन जाता है। राम राज्य भी इसी दिशा में एक कदम है। महाभारत के कृष्ण ने महाभारत का संचालन कर प्रतिकूल शक्तियों का नाश किया और ज्ञान, कर्म और शक्ति की एकता की स्थापना की। कालांतर में कर्मकांडों में हिंसा की प्रधानता और ज्ञान और भक्ति के कारण बुद्ध ने अवतार लिया।

राम का लोकसंग्रही रूप और धार्मिक समन्वय तुलसी ने तत्कालीन बौद्ध सिद्धों और नाथ योगियों की चमत्कारी प्रथा का खंडन -मंडन करके राम के लोक रूप की स्थापना की। राम के इस रूप में उन्होंने समन्वय स्थापित करने का भरपूर प्रयास किया है। तत्कालीन समाज में तीन शैवों, वैष्णवों और पुष्टिमार्गियों में परस्पर विरोध था। इस कठिन समय में तुलसीदास ने वैष्णवों के धर्म को इतने व्यापक रूप में प्रस्तुत किया कि तीनों संप्रदायों को उसमें समानता का अनुभव हुआ। तुलसी के इस प्रयास की एक झलक मानस में देखी जा सकती है। राम कहते हैं-

"शिव द्रोही मम दास कहावा। सो नर मोहि सपनेहु नहिं भावा ॥
संकर विमुख भगति चह मोरि। सो नारकीय मूढ़ मति थोरी ॥"

इसी प्रकार उन्होंने वैष्णवों और शाक्त के सामंजस्य को भी दर्शाया है।

"नहिं तब आदि मध्य अवसाना। अमित प्रभाव बेद नहिं जाना।।
भव-भव विभव पराभव कारिनि। विश्व विमोहनि स्दबस बिहारिनि ||"

पुष्टिमार्गी के 'अनुग्रह' का महत्त्व भी दर्शनीय है-

"सोइ जानइ जेहु देहु जनाई। जानत तुमहि होइ जाई ॥

तुमरिहि कृपा तुमहिं रघुनंदन। जानहि भगत भगत उर चंदन ॥"

यह तो हो गई तुलसीदास की तत्कालीन धार्मिक वातावरण एवं उसमें समन्वय स्थापित करने की बात। इसका दूसरा पक्ष भी था उस युग में सगुण और निर्गुण उपासना का विरोध भी था । जहाँ सगुण धर्म में आचार-विचारों का महत्त्व तथा भक्ति पर बल दिया जाता था वहीं दूसरी ओर निर्गुण संत साधकों ने धर्म को अत्यंत सस्ता बना दिया था। गाँव के कुँओं पर भी अद्वैतवाद की चर्चा होती थी, किंतु उनके ज्ञान की कोरी कथनी में भावगुढ़ता एवं चिंतन का अभाव था। तुलसीदास ने ज्ञान और भक्ति के विरोध को मिटाकर वस्तुस्थिति स्पष्ट कर दी।

"अगुनहिं सगुनहिं कछु भेदा। कहहिं संत पुरान बुधवेदा ॥

अगुन अरूप अलख अज जोई। भगत प्रेम बस सगुन सी होई ॥"

ज्ञान भी मान्य है किंतु भक्ति की अवहेलना करके नहीं। ठीक इसी प्रकार भक्ति का भी ज्ञान से विरोध नहीं है। दोनों में केवल दृष्टिकोण का थोड़ा-सा अंतर है। राम कहते हैं-

'सुनि मुनि तोहि कहाँ सहरोसा। भजहि जे मोहि तजि सकल भरोसा ॥

करौं सदा तिन्ही कै रखवारी। जिमि बालकहिं राख महतारी ॥

गह सिसु बच्छ अनल अहिधाई। तह राखै जननी अरू गाई ॥

प्रौढ़ भये तेहि सुत पर माता। प्रीति करे नहिं पाछिल बाता ॥

मोरे प्रौढ़ तनय सम ग्यानी। बालक सुत सम दास अमानी ॥

जानहिं मोर बल निज बल नाहीं। दुह कहँ काम क्रोध रिपु आहीं ॥

यह विचारि पंडित मोहि भजहि। पाएहू ग्यान भगति नहिं तजहीं ॥"

हृदय की स्वच्छता पर बल तुलसीदास ने तत्कालीन धार्मिक संप्रदायवाद में बाहयाडंबर को प्रधानता न देते हुए हृदय की स्वच्छता पर विशेष बल दिया हुआ है । तुलसी के राम ने संतों के जो लक्षण बताए हैं, उसके मूल में हृदय की स्वच्छता है।

'निर्मल मन सोइ जन मोहि पावा। मोहि न कपट-छल छिद्र सुहावा ॥"

उस समय की धार्मिक स्थिति की मांग थी। तुलसीदास न केवल एक धार्मिक नेता थे बल्कि एक महान समाज सुधारक भी थे। उन्होंने राम राज्य की कल्पना करके उस समय की मौजूदा राजनीतिक गड़बड़ी को दूर करने का हरसंभव प्रयास किया। मुसलमानों की राजनीति से हिंदू जाति पर हमले हो रहे थे। इन विषम परिस्थितियों में तुलसीदास ने खलविनाशक राम के पराक्रमी और ओजस्वी जीवन के माध्यम से सार्वजनिक शिक्षा का पाठ पढ़ाया। अत्याचार का घड़ा अंत में भरने के बाद कैसे फूटता है, और इसके खिलाफ विद्रोह होता है और शांति स्थापित होती है, यह मन में देखा जाता है। रामराज्य के आदर्श की कल्पना कर तुलसी दास ने समाज के सामने एक उदाहरण प्रस्तुत किया कि राजा का आदर्श प्रजा का भरण-पोषण और दुष्टों का विनाश है।

समाज की गरिमा का प्रतिनिधित्वः तुलसीदास ने सार्वजनिक जीवन के विभिन्न संबंधों के माध्यम से समाज की गरिमा का प्रतिनिधित्व किया है 'पिता-पुत्र, 'माँ-पुत्र, 'भाई-भाई', 'राजा प्रजा', 'सास-बहू', 'पति-पत्नी आदि ने राम के महाकाव्य विस्तृत जीवन के कई प्रसंगों के माध्यम से उन सभी की गरिमा का वर्णन किया है। परिवर्तन युग की आवश्यकता थी और समय की आवश्यकता, पुराने रीति-रिवाजों और सामाजिक मानदंडों के खिलाफ विद्रोह की आवाजें सुनाई दे रही थीं। तुलसीदास ने इस विद्रोह को भली-भांति सुना, देखा और समझा। मानस में भी तुलसी ने कहा है-

"बरन धरम नहिं आश्रम चारी। श्रुति विरोध रत सव नरनारी ||

द्विज श्रुति बंचक भूप प्रजासम। कोउ नाहिं मान निगम अनुसासन ||"

तुलसी का मानस स्वान्तः सुखाय होते हुए भी परजन हिताय का संयोजक था। इसकी परिणति हमें संत के जीवन में देखने को मिलता है।

'मुद मंगलमय संत समाजू। जो जग जंगम तीरथराजू ||"

तुलसीदास ने मानस में लोक और वेद, व्यवहार एवं शास्त्र का समन्वय प्रस्तुत किया है।

"चली सुगम कविता सरिता सो। राम विमल जस भरिता सो ॥

सरजू नाम सूमंगल मूला। जाकि वेद मत मंजुस कूला ||"

चित्रकूट में भरत-राम मिलन के अवसर पर होने वाली सभा में तुलसी ने भरत के वचनों के द्वारा साधुमत, लोकमत, राजनीति एवं वेदमत के मध्य से सुंदर समन्वय प्रस्तुत किया हुआ है। रामचंन्द्र शुक्ल के अनुसार- साधुमत का अनुसरण व्यक्तिगत साधन है, लोकमत लोकशासन के लिए है। इन दोनों का सामंजस्य तुलसी की धर्म भावना के भीतर है।" आध्यात्मिक क्षेत्र में समन्वयः उस युग में ईश्वर प्राप्ति के साधनों की बहुलता थी। विभिन्न दर्शनों के मक्कड़जाल में जनता उलझी हुई थी। तुलसीदास ने द्वैत-अद्वैत, द्वैताद्वैत तीनों सिद्वान्तों को भ्रम मानते हुए कहा-

'तुलसी दास परिहरै तीन भ्रम सो आपन पहिचानै।"

उनके ब्रह्म की मर्यादा विशिष्टाद्वैत से ही निर्मित है-

सीया-राममय सब जग जानी । करहूँ प्रनाम जोरि जुग पानी ॥"

काव्य शैली में समन्वयः तुलसी पूर्णतया समन्यवादी थे। उन्होंने काव्य की भाषा-शैली पर भी समन्वय की मोहर लगा दी। उन्होंने तत्कालीन कृष्ण-काव्य की ब्रज-भाषा और प्रेम काव्यों की अवधी भाषा दोनों का प्रयोग कर अपने समन्वयकारी दृष्टिकोण का परिचय दिया। तुलसी की रचना में उनके हृदय से सीधे निकले हुए भाव है, इसी कारण तुलसी का काव्य सर्वश्रेष्ठ है। तुलसी ने रामकाव्य की रचना का उद्देश्य ही लोककल्याण बताया है; यथा-

'कीरति भनिति भूति भलि सोई।

सुरसरि सम सब कहँ हित होई ॥"

भक्तिकाल में ब्रहम के सगुण व निर्गुण स्वरूप को लेकर जो विवाद चला उस पर भारतीय दर्शन में बहुत गम्भीर चिन्तन-मनन हुआ है। शंकराचार्य के अनुसार तत्व केवल एक है-ब्रहम'। ये ब्रहम को स्वरूपतः

निर्गुण व निराकार मानते है जबकि वल्लभाचार्य ने सगुण ब्रह्म को पारमार्थिक सत्य माना है लेकिन तुलसीदास के अनुसार राम के दोनों रूप-निर्गुण और सगुण परमार्थतः सत्य हैं।

"अगुन सगुन दुई ब्रह्म सरूपा।
अकथ अगाथ अनादि अनूपा।।"

तुलसीदास के अनुसार निर्गुण और सगुण में कोई तात्विक भेद नहीं है । दोनों स्वरूपों की अभेदता को स्पष्ट करने के लिए उन्होंने दृष्टान्त भी दिया है-

"एक दारूगत देखिए एकू। पावक जुग सम ब्रह्म विवेकू ।।"

अर्थात् अग्नि के दो रूप हैं, एक अव्यक्त और एक व्यक्त। इसका दारूगत अव्यक्त रूप ही व्यक्त होने पर दृश्यमान हो जाता है। उसी प्रकार ईश्वर का भी जो निर्गुण व निराकार रूप है, जो दृष्टव्य नहीं है, वही प्रकट होने पर सगुण व साकार रूप में दिखाई देने लगता है-

"अगुन अरूप अलख अज जोई।
भगत प्रेम बस सगुन सो होई।।"

और तुलसी के राम उसी निर्गुण भगवान के सगुण, साकार और अवतार हैं। हालांकि, तुलसीदास के संबंध में यह कहना गलत नहीं होगा कि उन्होंने सगुण की पूजा को निर्गुण से अधिक श्रेष्ठ माना है क्योंकि उनकी राय के अनुसार निर्गुणो उपासना की पूजा केवल योगियों और ज्ञानियों तक ही सीमित है, जबकि सभी मनुष्य इसके हकदार हैं। सगुणोपासना की पूजा करने के लिए। वह एक सुरसारी की तरह है, जो सभी के लिए फायदेमंद है। लेकिन साथ ही उन्होंने जिस तरह से निर्गुण और सगुण, निराकार और साकार, अव्यक्त और व्यवत, अंत्यमी और बाहरी, गुणतीत और गुणश्रय को एक साथ दिखाकर भक्ति के क्षेत्र में अपने राम को दिखाया है, वह अद्भुत है।

इसी के चलते तुलसी ने राम की कथा शिव-मुख से कहलवाई। यही नहीं उन्होंने शिव के मुख से भी राम की प्रशंसा भी करवाई है वहीं दूसरी और शिव के ही अंश रूप हनुमान के द्वारा राम की भक्ति तुलसी ने करवाई है तो राम के द्वारा भी जगह-जगह शिव की भक्ति व आराधना करवाई है और राम के मुख से भी कहलवाया है-

"सिव द्रोही मम दास कहावा।
सो नर सपनेहूं मोहि नहिं पावा।।"

इस प्रकार तुलसी ने राम और शिव का परस्पर आत्मीय संबंध अपने साहित्य में निरूपित किया है। यद्यपि तुलसी मूलतः राम भक्त हैं किन्तु उन्होंने कहीं भी राम को शिव से श्रेष्ठ सिद्ध करने की चेष्टा नहीं की है। दोनों को समान महत्त्व दिया है। लंका प्रयाण के समय सागर पर सेतु-बंधन के पश्चात् शिव की आराधना व शिवलिंग की स्थापना, रामचरितमानस में राम कथा से पूर्व शिव कथा, 'पार्वती-मंगल की स्वतंत्र रचना और 'विनयपत्रिका' में 12 पदों में शिव की वंदना आदि इनके इसी प्रयास का अंश है।

अपने इस समन्वय के प्रयास में तुलसी ने ज्ञान व भक्ति के अन्तर को भी पाटने का प्रयास किया है। वैष्णव आचार्य भक्ति को श्रेष्ठ मानकर चल रहे थे जबकि सांख्य योग में ज्ञान की श्रेष्ठता प्रतिपादित की

गई है। अतः तुलसी ने दोनों का समन्वय करते हुए विरति विवेक संयुक्त भक्ति और ज्ञानी भक्त को श्रेष्ठ बतलाया है-

"श्रुति सम्मत हरि भगति पंथ संजुत विरति विवेक।"

यद्यपि तुलसी ने ज्ञान मार्ग को तलवार की धार के समान तीक्ष्ण और दुरूह भी बताया है लेकिन साथ ही वे यह भी कहते हैं कि साध्य की दृष्टि से ज्ञान भक्ति में कोई विशेष अन्तर नहीं है-

"भगतिहिं ग्यानहिँ नहिं कछु भेदा।

उभय हरहिं भव सम्भव खेदा।।"

इसलिए वे केवल भक्ति या कोरे ज्ञान की अपेक्षा भक्ति समन्वित ज्ञान को श्रेष्ठ मानते हैं। इस सबके अतिरिक्त तुलसीकालीन शासन व्यवस्था भी कई प्रकार के अन्तर्विरोधों से ग्रस्त हो चुकी थी। मुगल शासकों का वास्तविक उद्देश्य प्रजा-पालन और प्रजा-रंजन न होकर अपने साम्राज्य की स्थापना, निजी योग क्षेम और भोग विलास ही था और इसके लिए जनता की मेहनत की कमाई खर्च की जा रही थी इसलिए प्रजा भी असंतुष्ट और दुखी होकर अपने मन मुताबिक रास्ते पर चलने के लिए बाध्य थी। अर्थात् राजा और प्रजा के बीच की दूरी लगातार बढती जा रही थी जो कि समाज के लिए बहुत खेद जनक बात थी। तुलसी ने 'रामचरितमानस के उत्तर कांड में कलियुग वर्णन के माध्यम से चित्रण किया है और मात्र चित्रण ही नहीं किया है बल्कि इस स्थिति को सुधारने का प्रयास भी किया है। रामराज्य के रूप में एक आदर्श शासन व्यवस्था की स्थापना अपने साहित्य के उद्देश्य तुलसी बताते है कि किसी भी देश और समाज की सुख-समृद्धि के लिए शासक व जनता का समन्वित है। उनके अनुसार एक शासक या कहें कि अच्छे शासक को मुख की भांति होना चाहिए जो समस्त शरीर रूपी प्रजा का पालन-पोषण भली प्रकार से कर पाए |

“ मुखिया मुख सो चाहिए खान पान कौ एक। पालई पोषई सकल अंग तुलसी सहित विवेक।।"

यद्यपि देखा जाए तो तुलसी दास वर्णाश्रम धर्म के कट्टर समर्थक हैं और उन्होंने न केवल अपने विभिन्न कार्यों में कलियुग का वर्णन करते हुए इसके पतन पर खेद व्यक्त किया है-

"बरन धर्म नहिं आश्रम चारी।

श्रुति विरोध रत सब नर नारी।।"

बल्कि धर्म-निरूपण के प्रसंगों में उनके पालन पर भी बल दिया है। परन्तु उनका दृष्टिकोण संकुचित नहीं है। उनका लक्ष्य लोक कल्याण है और इसीलिए वे उच्चतम वर्ण ब्राहमण और निम्नतम वर्ण शूद्र, दोनों को भक्ति का समान अधिकार दिया है फिर चाहे वह शबरी के बेर खानें का प्रसंग हो या केवट व निषाद के साथ राम, भरत व गुरू वशिष्ठ की भेंट का प्रसंग। क्षत्रिय श्रेष्ठ भरत व ब्राहमण रत्न वशिष्ठ के द्वारा निषाद व केवट को प्रेमपूर्वक गले लगाने की बात तुलसी ने कही है-

"प्रेम पुलकि केवट कहि नामू। कीन्ह दूरि तें दंड प्रनामू ।।

रामसखा रिषि बरबस भेंटा। जनु महि लुटत सनेह समेटा।।"

कहने का मतलब यह है कि तुलसी ने वर्णाश्रम धर्म के समर्थक होकर व उसे समाज के सुचारू संचालन के लिए अनिवार्य मानते हुए भी मानव धर्म को ही अधिक महत्त्व देकर समाज के वर्णभेद के बीच सामंजस्य

स्थापित करने का प्रयास किया है। ईश्वर में पूरी आस्था और मनुष्य का पूरा सम्मान, ये दोनों दृष्टियाँ तुलसी में एक दूसरे से जुडी हुई हैं-

"सिया-राममय सब जग जानी। करहुँ प्रनाम जोरि जुग पानी।।"

उपरोक्त पंक्ति इनके इसी गहन आत्मविश्वास की सूचक है। जहाँ ईश्वर और मनुष्य दोनों की एक साथ प्रतिष्ठा होती है । 'सिया-राम' यदि उनकी भक्ति के लिए आश्रय स्थल हैं तो 'सब-जग' उनके रचना-कर्म के लिए। अनुभूति और अभिव्यक्ति का संश्लिष्ट रूप रचना में, वस्तुतः मानस में दिखाई देता है वह ईश्वर और मनुष्य की इस एकरूपता में से निकलता है। एक स्तर पर ईश्वर और मनुष्य का समन्वित रूप तुलसी के राम दशरथ पुत्र के साथ साथ परब्रह्म परमात्मा विष्णु के अवतार हैं जिन्होंने धर्म की स्थापना, मानव रक्षा व असुर संहार के लिए मनुष्य रूप में अवतार लिया है-

"विप्र धेनु, सुर संत हित लीन्ह मनुज अवतार।"

उपसंहार

तुलसीदास वास्तविक तौर पर समन्वयवादी थे। उन्होंने उपर्युक्त क्षेत्रों के अलावा अन्य बहुत से क्षेत्र में समन्वय स्थापित किया। इस प्रकार अपने युग, परिस्थितियों की माँगों और आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए उन्होंने अपने साहित्य में भक्ति, धर्म, भाषा, साहित्य, पारिवारिक जीवन, समाज आदि सभी क्षेत्रों में व्याप्त संघर्ष और वैमनस्य को दूर करने के लिए जो प्रयास किए हैं। वह अतुलनीय है। और इस प्रयास से उन्होंने भारतीय जनता के दिल में, साहित्य में जो स्थान हासिल किया है, वह कोई और लेखक आज तक नहीं कर पाया है । इन सबके अलावा जहां-जहां तुलसी को सांस्कृतिक क्षेत्र में विरोध की झलक मिली है, उन्होंने उसे दबाने की कोशिश की है | यद्यपि भारतीय संस्कृति अपने आप में समन्वयवाद का उत्कृष्ट उदाहरण है। समय-समय पर इस देश में अनेक संस्कृतियां आई और उभरी, लेकिन वे आपस में मिल कर एक हो गईं। कितनी दार्शनिक, धार्मिक, सामाजिक, साहित्यिक और सौंदर्यवादी विचारधाराओं का विकास हुआ, लेकिन वे अंत में एक संगम के रूप में परिणत हुई। परन्तु फिर भी तुलसी ने उसमें मौजूद कुछ विरोधी तत्वों को समेटने की कोशिश की है, जैसे कि जीवन, राज्य वर्ग की संस्कृति, आम लोगों और कोल-किरातों को तुलसी ने उसी तरह चित्रित किया है, लेकिन राम के संबंध में, उनके पास यह सब है। जीवन शैली को एकीकृत किया गया है। और सबसे महत्वपूर्ण बात हिंदू संस्कृति के साथ मुस्लिम संस्कृति का एकीकरण भी हुआ है । सनातन धर्म और भारतीय संस्कृति के कट्टर अनुयायी होने के बावजूद तुलसीदास ने अपने दृष्टिकोण को उदार रखते हुए अपनी कविता को आगे बढ़ाया है। और इसीलिए राम की सेवा में भेजी गई ' विनय पत्रिका ' का विधान मुगल बादशाह को भेजी गई प्रार्थना के मुताबिक किया गया है। इसके साथ ही अरबी-फारसी की शब्दावली का भी भरपूर उपयोग किया गया है।

संदर्भ सूची

[1]. हिन्दी साहित्य की भूमिका आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, राजकमल प्रकाशन, संस्करण-2010, पृष्ठ सं. 98

[2]. रामचरितमानस, बालकाण्ड, 23/

[3]. वही, 23/2, 116/2

[4]. वही, उत्तरकाण्ड, 117/2

[5]. हिन्दी साहित्य का विकास आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, मलिक एण्ड कम्पनी प्रकाशन, संस्करण-2009, पृष्ठ सं. 115

[6]. रामचरितमानस, लंकाकाण्ड, 2/8

[7]. वही, उत्तरकांड, दोहा सं.-100

[8]. वही, उत्तरकांड, 115/13

[9]. दोहावली, 522,523

[10]. हिंदी साहित्य का इतिहास , डॉ . नागेन्द्र

[11]. रामचरितमानस, उत्तरकांड, 98/1-2

[12]. रामचरितमानस, अयोध्याकाण्ड, 243/3

[13]. वही, बालकाण्ड, 8/1-2

[14]. वही, बालकाण्ड, दोहा सं.- 192

[15]. हिन्दी साहित्य का विकास आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, मलिक एण्ड कम्पनी प्रकाशन, संस्करण-2009, पृष्ठ सं.-113

[16]. हिन्दी साहित्य की प्रवृतियाँ डॉ. जयकिशन प्रसाद खंडेलवाल पृ.सं. 223

[17]. हिन्दी साहित्य की प्रवृतियाँ डॉ. जयकिशन प्रसाद खंडेलवाल पृ.सं. 227

Cite this Article

डॉ० होशियार सिंह, "तुलसीदास के साहित्य में समन्वय की प्रासंगिकता", *International Journal of Multidisciplinary Research in Arts, Science and Technology (IJMRAST),* ***ISSN:*** *2584-0231, Volume 3, Issue 8, pp. 176-186, August 2025.*

Journal URL: *https://ijmrast.com/*

DOI: *https://doi.org/10.61778/ijmrast.v3i8.171*

This work is licensed under a Creative Commons Attribution-NonCommercial 4.0 International License.